International Journal of Applied Research 2019; 5(1): 423-425

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2019; 5(1): 423-425
www.allresearchjournal.com
Received: 22-11-2018
Accepted: 25-12-2018

डॉ राजेश कुमार मिश्र
तुमौल, पुतइ, दरभंगा, बिहार, भारत

Corresponding Author:
डॉ राजेश कुमार मिश्र
तुमौल, पुतइ, दरभंगा, बिहार, भारत

आनन्दरामायण में वर्णित धार्मिक–जीवन मीमांसा

डॉ राजेश कुमार मिश्र

सारांश
आनन्दरामायण में भारतीय संस्कृति की पूर्णरूपेण प्रतिष्ठा दी गई है। महामानव राम के आदर्शपरित्र को उद्घाटित करते हुए पारिवारिक–जीवन में माता– पिता के महत्त्व, पंच महायज्ञ, षोडश–संस्कार, यम–नियम, वर्ण–धर्म, पठन–पाठन और सेवा के साथ–साथ व्रत, दान तथा तीर्थ–यात्रा के महत्त्व को दिखाया गया है क्योंकि नियमबद्ध संयमित और सात्विक जीवन ही धार्मिक जीवन है।

प्रमुख शब्दः– धर्म, अवतार, पंचमहायज्ञ, मानसीपूजा, वहिःपूजा, नवायतनपूजा, पंचायतनपूजा, व्रत, दान, तीर्थ–यात्रा और भजन–कीर्तन आदि।

प्रस्तावना
भारतीय साहित्य में रामकाव्य की परम्परा का बीज–स्थल कहाँ है– सभी जानते हैं। कवि वाल्मीकि के साथ ऐसी घटना घटी की उन्होंने 'रामायण' की रचना ही कर डाली। रामकाव्य का आदि उत्स सिद्ध ही नहीं हुआ, वरन् विश्व साहित्य में आदिकाव्य भी सिद्ध हुआ। पश्चात् भारतीय साहित्य में रचे गये रामकाव्य का यह उपजीव्य भी बना।
वैदिककाल में धर्म के संस्थापक भारतीय आर्यो एवं भिन्न संस्कृत से युक्त आर्येतर सम्प्रदायों के क्रिया–कलापों, विचारों, आचारों तथा जनकल्याण कामनाओं के मिश्रित रुप से ही भारतीय संस्कृति की संस्थापना की गई थी, किन्तु समाज में व्याप्त विश्रृालता को दूर करने के निमित्त युग–धर्म की स्थापना के लिए आदि कवि ने ही सर्वप्रथम आदर्श एवं उदात्त चरित की परिकल्पना की जो रामकाव्य के रूप में भारतीय जीवन का आदर्श प्रमाणित हुआ। आनन्दरामायण में भी वर्णित धार्मिक–जीवन में निष्काम और अनुरागात्मिका भक्ति की महत्ता को दिखाया गया है।
'धृ' धातु से बने धर्मशब्द प्राचीन काल से ही व्यापक अर्थो में प्रयुक्त होता रहा है। वेदव्यास के अनुसार ''धारण करना, आलम्बन देना अथ च पालन करना अर्थात् जो तत्त्व सम्पूर्ण जगत के जीवन को धारण करता है, जिसके बिना लोक की स्थिति संभव न हो, जिससे सभी कर्म संयमित, सुव्यवस्थित एवं सुसंचालित रहे उसे धर्म कहते है–

धारणाद्धर्मतित्याहुधर्मेण विधृताः प्रजाः।
यः स्याद् धारण संयुक्तः स धर्म इति निश्चयः।।[1]

प्रजा (समाज) को धारण करने का भाव यह है कि धर्म समाज में व्यवस्था स्थापित करके समाज को बनाए रखता है, उससे शांति, सौहार्द और समरसता कायम रहती है। हमारे नैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों का संरक्षण धर्मानुशासन से ही होता है। [2]
महर्षि कणाद ने वैशेषिक दर्शन में धर्म की व्याख्या करते हुए लिख है–

''यतोऽभ्युदय नि'श्रेयससिद्धि स धर्मः''

अर्थात् जिससे अभ्युदय और निःश्रेयस की सिद्धि हो वह धर्म है। अभ्युदय मानव सभ्यता की प्रगति का द्योतक हैं जिससे ऐश्वर्य, काम और यश की प्रधानता द्योतित है। वेद मानव को दीन (गरीब, अस्वस्थ) नहीं, अदीन (धनवान, स्वस्थ) बनाना चाहता है– ''अदीनाः स्याम शरदः शतम्'' अर्थात् हम सौ वर्ष तक अदीन होकर जीवित रहें। वदेव्यास ने भी सौरव्यपूर्ण जीवन को जीवन मानते हुए मनुष्य से बढ़कर अन्य किसी को नहीं माना है– ''न हि मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किंचित्''[3]।
वैदिक काल के पश्चात् परिवर्तित समय के साथ धार्मिकजीवन में बहुत से परिवर्तन होते गए और उसका विकास भी होने लगा। जैसे– वैदिककाल के इन्द्र, वरुण, अग्नि आदि का महत्वपूर्ण स्थान ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि ने ले लिया उन्हीं की स्तुति, उपासना आदि की जाने लगी। त्रिदेव की यह भावना पुराणों में अधिक विकसित हुई।

गुप्तकाल ब्राह्मण धर्म के उत्थान का प्रतीक माना जाता है। गुप्त सम्राटो ने वैदिक धर्म के विविध अनुष्ठानों एवं क्रिया–कलापों को अपनाया और वैदिक रीति से यज्ञ आदि किए उस काल में वैष्णव, शैव तथा बौद्ध धर्म का भी प्रचलन था, तथा उसी समय में मूर्ति उपासना का केन्द्र बन गयी और यज्ञ का स्थान उपासना ले लिया। मूर्ति को बलि चढ़ाने की प्रथा भी प्रचलित रही। मानव जीवन के चार लक्ष्य बनाए गए– धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। मोक्ष प्राप्ति के लिए धर्म, अर्थ और काम का सम्यक संतुलन आवश्यक था। अतएव अवतारवाद के समर्थकों ने क्रमशः वैष्णव तथा शैव धर्म की प्रतिष्ठा करने लगे। जिससे भक्ति के सिद्धान्त को प्रोत्साहन मिला।

आनन्दरामायण के रचना काल में शिव, सूर्य, गणेश, शक्ति तथा विष्णु इन पॉचों देवों का महत्त्व समाज और राष्ट्र में अधिक था। इसलिए लोगों के धार्मिक जीवन मे इन देवों की पूजा और भक्ति की बात की गयी है– ''लोगों को चाहिए कि गुरु की मुख से इन्हीं पॉचों देवो मे से किसी एक की उपासना ग्रहण करें।''[4] यद्यपि आनन्दरामायण में वैचारिक उदारता सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है, तथापि राम के सम्पूर्ण चरित्र का महत्त्व प्रदर्शित करने के क्रम में तत्कालीन समाज में पूजित देवताओं की महत्ता को प्रत्यक्ष करना इसकी विशिष्टता को प्रदर्शित करती है।

आनन्दरामायण में मानसी पूजा और वहिः पूजा का विधान प्रस्तुत करने के क्रमे में निर्देशित किया गया है– उपासक को चाहिए कि प्रातः काल उठे और शौचादि से निवृत्त होकर स्नान सन्ध्या–बन्दन आदि करें, फिर किसी तीर्थ देवालय, गोशाला या पवित्र स्थान में देवपूजा प्रारंभ करे। इसके उपरान्त किसी नदी तट पर, देव मंदिर अथवा तुलसी क पास गोबर से नीपकर पद्माकार (अष्टदल कमल का) अरिपन बनाकर पूजन आरंभ करें।[5] पूज्य और पूजक इन दोनों के लिए पूर्व दिशा को ही पूजन करने योग्य कहा गया है।[6] राम की नवायतन पूजा सर्वश्रेष्ठ तथा पंचायतन पूजा मध्यम कही गयी है।[7] उपासक को कहा गया है कि पूजा के समय आनन्दपूर्वक पूर्व की ओर मुख करके पद्मासन में बैठे और निश्चल मन करके तुलसी की माला लिए, शिखा बाँधे, अंगुली में पिवत्री तथा पवित्र वस्त्र पहने हुए, द्वारका की शुद्धमृत्तिका का तिलक, वार (दिन) आदि का उच्चारण करे। भूमि शुद्ध, भूत शुद्धि तथा अंगन्यास–करन्यास करके प्रोक्षणी पात्र में जल भरे, दूर्वा–गंधाक्षत –पुष्प आदि उसमें डाले और प्रोक्षणी पात्र के जल से पास रखी हुई पूजन सामग्री का प्रोक्षण (सिंचन) करे, पाद्य, अर्ध्य एवं आचमन के लिए सामने तीन पात्र रखें। फिर गणेश, वरुण तथा पांचजन्य शंख का पूजन करके उसके जल से अपना पूजन–सामग्री तथा पृथ्वी का प्रोक्षण करें।[8] तदुपरान्त आवाह्न करने को कहते है।[9] यहाँ यह भी स्पष्ट कर दिया गया है कि– 1.चन्दन और पुष्प से मिले हुए तीर्थों के जल का पाद्य, 2. पुष्कर आदि तीर्थो तथा गंगा आदि नदियों के जल का अर्ध्य, 3. सुगंध से वासित तीर्थोदक से आचमन, 4. हल्दी कुमकुम और सुगंध द्रव्य तथा सुगंधित तेल से मिश्रित जल स्नान के निमित्त अर्पित होगा। गाय का दूध, दही, घृत, मधु तथा शक्कर से बना पंचामृत स्नानार्थ होगा।[10]

'नित्यकृत्य रत्नमाला' के अनुसार पाद प्रक्षालन योग्य जल पद्य है।[11] ताम्रपात्र या शंख में जल–चानन–बेलपात देकर अर्घ्य या अर्घ बनाया जाता है।[12] परन्तु देवीपुराण के अनुसार रक्त चंदन, विल्वपत्र, अक्षत, पुष्प, दधि, दूर्वा, कुशोदक तथा तिल से अर्घ्य बनाया जाता है।[13] ''पूजापंकज भास्कर'' में उल्लिखित है कि सामवेदी अर्घ्य शब्द का तथा शेष ब्राह्मण अर्घ शब्द का प्रयोग करें।[14] मधुपर्क या पंचामृत बनाने में सबसे कम दूध, घृत–दधि और चीनी की मात्रा समान तथा सबसे अधिक मधु मिलाना चाहिए।[15]

आनन्दरामायण में पूर्ण विधि–विधान के साथ रामार्चा का वर्ण न हुआ है। जिसमें ध्यान, आवाहन, आसन, पाद्य अर्घ्य, आचमन, स्नानीय, पंचामृत, पुनराचमन, चन्दन, अक्षत पुष्पमाला, धूप, दीप, नैवेद्य, ताम्बूल तथा दक्षिणा तक का उल्लेख है, यह षोडशोपचार पूजा के अन्तर्गत मान्य है।[16]

पाँच वित्तयों से युक्त कपिला गोय के घृत से मिश्रित एवं अग्नि से संयोजित रम्य नीराजन (आरती) का भी निर्देश है।[17]

यानि कानि च पापानि जन्मांतर कृतानि च।
तानि सर्वाणि निष्यंतु प्रदक्षिणा पदे–पदे।।[18]

इस मंत्र से प्रदक्षिणा की गई है तथा साष्टांग प्रणाम करने के उपरान्त आत्म निवेदन भी किया गया है–

आवाहनं न जातामि न जातामि विसर्जनम्
पूजा..... परमेष्वर।।
मंत्रहीन.....रघूत्तम।
यत्पूजितं भया देव परिपूर्ण तदस्तु मे।।[19]

इस प्रकार निरन्तर भक्ति पूर्वक पूजन करने का, विशेषकर रामनवमी को ऐसा करने का निर्देश किया गया है।[20]

आनन्दरामायण में मानसीपूजा का विधान भी बतलाया गया है– उपासक को चाहिए कि वह अपने हृदयरुपी कमल पर बैठे हुए राम का ध्यान करे– जिनके कमल की तरह विशाल नेत्र है, काले मेघ के समान नीले वर्ण हैं, मुस्कुराता हुआ मुख है और वे आनन्दपूर्वक बैठे हैं। उपासक का यह भी कर्त्तव्य है कि राग–द्वेष आदि से कलुषित चित्त को वैराग्य से निर्मल कर ले, तब भव–पाश से मुक्त होने के लिए राम का ध्यान करे।[21]

आनन्दरामायण के अनुसार शिव, सूर्य, गणेश तथा विष्णु इन देवों के असंख्य अवतार कहे गये हैं। हरिवंश पुराण तथा श्रीमद्भागवत पुराण में भी भगवान विष्णु के असंख्य अवतार होने का उल्लेख है। श्रीमद्भागवत के प्रथम स्कन्ध में प्रमुख कार्य के उल्लेखपूर्वक बाइस अवतारों की गणना की गई है। साथ ही इसी ग्रंथ के द्वितीय स्कन्ध में बाइस, दशमस्कन्ध में चौदह, एकादश स्कन्ध में बीस अवातारों का उल्लेख हुआ है किन्तु भागवत के प्रथम स्कन्ध में लिखित बाइस अवतारों में, द्वितीय, दशम एवं एकादश स्कन्ध में उल्लिखित हंस और ह्यग्रीव अवतारों को सम्मिलित करके अवतार संख्या चौबीस निर्धारित की है। इसीलिए आस्तिक जगत में भगवान के चौबीस अवतार अधिक प्रसिद्ध है, परन्तु आनन्दरामायण के इन चौबीस अवतारों के अतिरिक्त बीस और अवतारों का नामोल्लेख भक्ति के प्रवाह में अतिरंजित सा लगता है।

भक्तों एवं उपासकों को अपने–अपने उपसाय देवों का जन्मकाल जानकर उस समय महान उत्सव मनाते हुए उनकी पूजा करने का निर्देश हुआ है– 'उपासकों को उचित है कि नित्य अपने आराध्य देव की पूजा करें, विशेषकर उनके जन्म दिवस को उत्सव और पूजन अवश्य करना चाहिए।[22]

आनन्दरामायण धर्मग्रंथ है, इसलिए धर्म की अंगभूत भक्ति, व्रत, तीर्थ, दान और यज्ञों का वर्णन धार्मिक दृष्टि से ही हुआ है। निष्ठापूर्वक किए गए व्रत तथा दान से प्राप्त पुण्यों की विश्वसनीयता समाज में ऐसी थी कि सीता स्वयंवर के समय वहाँ उपस्थित नारियॉ बालक राम को देखते ही साक्षात् नारायण समझ कर ऐसे आत्मविभोर हो गई कि आकाश में स्थित शिव, विष्णु और ब्रह्मा से हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगी– हमारे पूर्वोपार्जित व्रतदान जन्य पुण्यों से यह बाल धनुष चढाने में समर्थ हो। आपलोग हमारे पुण्य–प्रताप से इस धनुष को पुष्प के समान हल्का बना दें, जिससे हमारी सीता इनके गले में वरमाला डाले।[23] आनन्दरामायण का निश्चयात्मक वाक्य है–

'विलयं यान्ति पापानि तीर्थदानव्रतादिभिः'

पुराणों के अनुसार जिस प्रकार शरीर के कुछ अंग यथा दाहिना कान या हाथ, अपेक्षाकृत अन्य अंगों से पवित्र माने जाते हैं, उसी

प्रकार पृथ्वी के कुछ स्थल पवित्र माने जाते हैं, जैसे– स्थल की कुछ आश्चर्यजनक प्राकृतक विशेषताओं के कारण, किसी जलीय स्थल की रमणीयता के कारण तथा ऋषि– मुनियों के वहाँ (स्नान करने, तपः साधनादि के कारण) रहने के कारण। अतः तीर्थ का अर्थ है– वह स्थान या जलयुक्त स्थान (नहीं, प्रपात, जलाश यादि) जो अपने विलक्षण स्वरुप के कारण पुण्यार्जन की भावना को जाग्रत करें।

गृहस्थों द्वारा दैनन्दिन जीवन में पंचमहा यज्ञों (भूतयज्ञ, पितृयज्ञ, मनुष्ययज्ञ, देवयज्ञ, तथा ब्रह्मयज्ञ) का संपादन निश्चित रुप से होता था। आनन्दरामायण में प्रसंगाधीन आया है कि– प्रतिदिन राम स्नानोपरान्त मध्याह्नकालीन कर्म कर पितरों का तर्पण, शिव को नैवेद्य अर्पण, बलिवैश्वदेव और काकवलि के उपरान्त भूतबलि देकर पितरों की स्वधा शब्द का उच्चारण करके तृप्त करते, काकबलि बाहर निकाल देते और उसके बाद सादर अतिथियों का सत्कार करते थे, ब्राह्मणों और यतियों का पूजन करने के पश्चात स्वयं भोजन करते थे। प्रत्यह प्रातः कालीन संध्या तथा ब्रह्मयज्ञ विधानपूर्वक करने की प्रचलित थी।

आनन्दरामायण के राम एक सौ यज्ञ सम्पन्न किए थे।[24] यज्ञ का उद्देश्य संस्कृति रक्षक, लोकोपकारक तथा भारत भ्रमण कर अनेकता में एकता प्रदार्शित करना था। इसी लिए कहा गया है– 'कुम्मोदर ब्राह्मण की आज्ञा से चिरकाल तक समस्त पृथ्वी का पर्यटन करने वाले, लोकशिक्षा के निमित्त अश्वमेघ यज्ञ करने वाले, सीता जी को प्रसन्न करने वाले रामचन्द्र जी की जय हो।[25]

निष्कर्ष

अन्त में मैं आनन्दरामायण में वर्णित धार्मिक जीवन पर रचनाकार द्वारा वर्णित कथाओं के अवलोकनोपरान्त कहना चाहूँगा कि जिनके द्वारा मानव समाज सत्मार्ग में प्रवृत्त होकर व उन्नतिशील बनकर अपने अस्तित्व को धारण करता है वही धर्म कहलाता है। 'सनातन धर्म शब्द भी इसी अर्थ का द्योतक है। धर्म ऋषि–मुनियों के द्वारा बनाया हुआ एक मार्ग है जिसमें सभी जाति के लोगों को परमशान्ति का अनुभव होता है, जिससे वह अपना यह लोक सुधारकर पारलौकिक उद्धार के लिए मार्ग प्रशस्त करता है। धीरे–धीरे वह उच्चमानसिक स्थिति प्राप्त कर सत्य का दर्शन करता है। यही परम सत्य धर्म का लक्ष्य है। भक्ति के क्षेत्र में रामानन्दाचार्य की उदारता और समन्वयात्मक दृष्टि अतिशय प्रशंसनीय रही है जो आनन्दरामायण में सर्वत्र परिदृष्ट होता है।

संदर्भ सूची

1. महाभारत, शान्तिपर्व, 109/11।
2. नत्थूलाल गुप्त, भारत की धार्मिक परम्परा, पृ0 5–6।
3. महाभारत, शान्तिपर्व, 180/12।
4. आ0रा0 मनोहर काण्ड 3/20–21।
5. आ0रा0 मनोहर काण्ड 3/121–128।
6. आ0रा0 मनोहर काण्ड 3/138।
7. आ0रा0 मनोहर काण्ड 3/149।
8. आ0रा0 मनोहर काण्ड 3/154–158।
9. आ0रा0 मनोहर काण्ड 3/166।
10. आ0रा0 मनोहर काण्ड 3/168–173।
11. म0म0 मुकुन्द झा वख्शी कृत नियकृत्य रत्नमाला – पृ0– 4।
12. वासुदेव झा – मि0 कृत्य मीमांसा– पृ0– 186।
13. नित्यकृत्यरत्नमाला –42।
14. पूजा पंकजभास्कर पृ0– 26।
15. मि0 कृत्यमीमांसा– पृ0 185।
16. आ0रा0 मनोहरकाण्ड –3/175–195।
17. अत्रैव – 3/196।
18. अत्रैव – 3/199।
19. अत्रैव – 3/201–202।
20. अत्रैव – 3/203।
21. अत्रैव – 3/55–57।
22. आ0रा0 मनोहरकाण्ड– 3/42–43।
23. आ0रा0 सारकाण्ड – 3/107–9।
24. आ0रा0 जन्मकाण्ड– 4/55।
25. आ0रा0 राज्यकाण्ड– 24/125।